पक्षी और दीमक

गजानन माधव मुक्तिबोध

पक्षी और दीमक

बाहर चिलचिलाती हुई दोपहर है लेकिन इस कमरे में ठंडा मद्धिम उजाला है। यह उजाला इस बंद खिड़की की दरारों से आता है। यह एक चौड़ी मुँडेरवाली बड़ी खिड़की है, जिसके बाहर की तरफ, दीवार से लग कर, काँटेदार बेंत की हरी-घनी झाड़ियाँ हैं। इनके ऊपर एक जंगली बेल चढ़ कर फैल गई है और उसने आसमानी रंग के गिलास

https://www.hindiadda.com/pakshi-aur-dimak/

जैसे अपने फूल प्रदर्शित कर रखे हैं। दूर से देखनेवालों को लगेगा कि वे उस बेल के फूल नहीं, वरन बेंत की झाड़ियों के अपने फूल हैं।

किंतु इससे भी आश्चर्यजनक बात यह है कि उस लता ने अपनी घुमावदार चाल से न केवल बेंत की डालों को, उनके काँटों से बचते हुए, जकड़ रखा है, वरन उसके कंटक-रोमोंवाले पत्तों के एक-एक हरे फीते को समेट कर, कस कर, उनकी एक रस्सी-सी बना डाली है; और उस पूरी झाड़ी पर अपने फूल बिखराते-छिटकाते हुए, उन सौंदर्य-प्रतीकों को सूरज और चाँद के सामने कर दिया है।

लेकिन, इस खिड़की को मुझे अकसर बंद रखना पड़ता है। छत्तीसगढ़ के इस इलाके में, मौसम-बेमौसम आँधीनुमा हवाएँ चलती हैं। उन्होंने मेरी खिड़की के बंद पल्लों को ढीला कर डाला है। खिड़की बंद रखने का एक कारण यह भी है कि बाहर दीवार से लग कर खड़ी हुई हरी-घनी झाड़ियों के भीतर जो छिपे हुए, गहरे, हरे-साँवले अंतराल हैं, उनमें पक्षी रहते हैं और अंडे देते हैं। वहाँ से कभी-कभी उनकी आवाजें, रात-बिरात, एकाएक सुनाई देती हैं। वे तीव्र भय की रोमांचक चीत्कारें हैं क्योंकि वहाँ अपने शिकार की खोज में एक भुजंग आता रहता है। वह, शायद उन तरफ की तमाम झाड़ियों के भीतर रेंगता फिरता है।

एक रात, इसी खिड़की में से एक भुजंग मेरे कमरे में भी आया। वह लगभग तीन-फीट लंबा अजगर था। खूब खा-पी कर के, सुस्त हो कर, वह खिड़की के पास, मेरी साइकिल पर लेटा हुआ था। उसका मुँह 'कैरियर' पर, जिस्म की लपेट में, छिपा हुआ था और पूँछ चमकदार 'हैंडिल' से लिपटी हुई थी। 'कैरियर' से ले कर 'हैंडिल' तक की सारी लंबाई को उसने अपने देह-वलयों से कस लिया था। उसकी वह काली-लंबी-चिकनी देह आतंक उत्पन्न करती थी।

हमने बड़ी मुश्किल से उसके मुँह को शिनाख्त किया। और फिर एकाएक 'फिनाइल' से उस पर हमला करके उसे बेहोश कर डाला। रोमांचपूर्ण थे हमारे वे व्याकुल आक्रमण! गहरे भय की सनसनी में अपनी कायरता का बोध करते हुए, हम लोग, निर्दयतापूर्वक, उसकी छटपटाती देह को लाठियों से मारे जा रहे थे।

उसे मरा हुआ जान, हम उसका अग्नि-संस्कार करने गए। मिट्टी के तेल की पीली-गेरूई ऊँची लपक उठाते हुए, कंडों की आग में पड़ा हुआ वह ढीला नाग-शरीर, अपनी बची-खुची चेतना समेट कर, इतनी जोर-से ऊपर उछला कि घेरा डाल कर खड़े हुए हम लोग हैरत में आ कर, एक कदम पीछे हट गए। उसके बाद रात-भर, साँप की ही चर्चा होती रही।

इसी खिड़की से लगभग छह गज दूर, बेंत की झाड़ियों के उस पार, एक तालाब है... बड़ा भारी तालाब, आसमान का लंबा-चौड़ा आईना, जो थरथराते हुए मुस्कराता है। और उसकी थरथराहट पर किरनें नाचती रहती हैं।

मेरे कमरे में जो प्रकाश आता है, वह इन लहरों पर नाचती हुई किरनों का उछल कर आया हुआ प्रकाश है। खिड़की की लंबी दरारों में से गुजर कर वह प्रकाश, सामने की दीवार पर चौड़ी मुँडेर के नीचे सुंदर झलमलाती हुई आकृतियाँ बनाता है।

मेरी दृष्टि उस प्रकाश-कंप की ओर लगी हुई है। एक क्षण में उसकी अनगिनत लहरें नाचे जा रही हैं, नाचे जा रही हैं। कितना उद्दाम, कितना तीव्र वेग है उन झिलमिलाती लहरों में। मैं मुग्ध हूँ कि बाहर के लहराते तालाब ने किरनों की सहायता से अपने कंपों की प्रतिच्छवि मेरी दीवार पर आँक दी है।

काश, ऐसी भी कोई मशीन होती जो दूसरों के हृदयकंपनों को, उनकी मानसिक हलचलों को, मेरे मन के परदे पर चित्र रूप में उपस्थित कर सकती।

उदाहरणत:, मेरे सामने इसी पलंग पर, वह जो नारी-मूर्ति बैठी है, उसके व्यक्तित्व के रहस्य को मैं जानना चाहता हूँ, वैसे, उसके बारे में जितनी गहरी जानकारी मुझे है, शायद और किसी को नहीं।

इस धुँधले अँधेरे कमरे में वह मुझे सुंदर दिखाई दे रही है। दीवार पर गिरे हुए प्रत्यावर्तित प्रकाश का पुन: प्रत्यावर्तित प्रकाश, नीली चूडियोंवाले हाथों में थमे हुए उपन्यास के पन्नों पर, ध्यानमग्न कपोलों पर और आसमानी आँचल पर फैला हुआ है। यद्यपि इस समय हम दोनों अलग-अलग दुनिया में (वह उपन्यास के जगत में और मैं अपने खयालों के रास्तों पर) घूम रहे हैं, फिर भी इस अकेले धुँधुले कमरे में गहन साहचर्य के संबंध-सूत्र तड़प रहे हैं और महसूस किए जा रहे हैं।

बावजूद इसके, यह कहना ही होगा कि मुझे इसमें 'रोमांस' नहीं दीखता। मेरे सिर का दाहिना हिस्सा सफेद हो चुका है। अब तो मैं केवल आश्रय का अभिलाषी हूँ, ऊष्मापूर्ण आश्रय का...

फिर भी मुझे शंका है। यौवन के मोह-स्वप्न उद्दाम आत्मविश्वास अब मुझमें नहीं हो सकता। एक वयस्क पुरुष का अविवाहिता वयस्का स्त्री से प्रेम भी अजीब होता है। उसमें उद्बुद्ध इच्छा के आग्रह के साथ-साथ जो अनुभवपूर्ण ज्ञान का प्रकाश होता है, वह पल-पल पर शंका और संदेह को उत्पन्न करता है।

श्यामला के बारे में मुझे शंका रहती है। वह ठोस बातों की बारीकियों का बड़ा आदर करती है। वह व्यवहार की कसौटी पर मनुष्य को परखती है। वह मुझे अखरता है। उसमें मुझे एक ठंडा पथरीलापन मालूम होता है। गीले-सपनीले रंगों का श्यामला में सचमुच अभाव है।

ठंडा पथरीलापन उचित है, या अनुचित, यह मैं नहीं जानता। किंतु जब औचित्य के सारे प्रमाण, उनका सारा वस्तु-सत्य पॉलिशदार टीन-सा चमचमा उठता है, तो मुझे लगता है - बुरे फँसे इन फालतू की अच्छाइयों में, दूसरी तरफ मुझे अपने भीतर ही कोई गहरी कमी महसूस होती है और खटकने लगती है।

ऐसी स्थिति में मैं 'हाँ' और 'ना' के बीच में रह कर, खामोश, 'जी हाँ' की सूरत पैदा कर देता हूँ। डरता सिर्फ इस बात से हूँ कि कहीं यह 'जी हाँ' 'जी हुजूर' न बन जाए। मैं अतिशय शांति-प्रिय व्यक्ति हूँ। अपनी शांति भंग न हो, इसका बहुत खयाल रखता हूँ। न झगड़ा करना चाहता हूँ, न मैं किसी झगड़े में फँसना चाहता...

उपन्यास फेंक कर श्यामला ने दोनों हाथ ऊँचे करके जरा-सी अँगड़ाई ली। मैं उसकी रूप-मुद्रा पर फिर से मुग्ध होना ही चाहता था कि उसने एक बेतुका प्रस्ताव सामने रख दिया। कहने लगी, 'चलो, बाहर घूमने चलें।'

मेरी आँखों के सामने बाहर की चिलचिलाती सफेदी और भयानक गरमी चमक उठी। खस के परदों के पीछे, छत के पंखों के नीचे, अलसाते लोग याद आए। भद्रता की कल्पना और सुविधा के भाव मुझे मना करने लगे। श्यामला के झक्कीपन का एक प्रमाण और मिला।

उसने मुझे एक क्षण आँखों से तौला और फैसले के ढंग से कहा, 'खैर, मैं तो जाती हूँ। देख कर चली जाऊँगी... बता दूँगी।'

लेकिन चंद मिनटों बाद, मैंने अपने को चुपचाप उसके पीछे चलते हुए पाया। तब दिल में एक अजीब झोल महसूस हो रहा था। दिमाग के भीतर सिकुड़न-सी पड़ गई थी। पतलून भी ढीला-ढाला लग रहा था, कमीज के 'कॉलर' भी उल्टे-सीधे रहें होंगे। बाल अन-सँवरे थे ही। पैरों को किसी-न-किसी तरह आगे ढकेले जा रहा था।

लेकिन यह सिर्फ दुपहर के गरम तीरों के कारण था, या श्यामला के कारण, यह कहना मुश्किल है।

उसने पीछे मुड़ कर मेरी तरफ देखा और दिलासा देती हुई आवाज में कहा, 'स्कूल का मैदान ज्यादा दूर नहीं है।'

वह मेरे आगे-आगे चल रही थी, लेकिन मेरा ध्यान उसके पैरों और तलुओं के पिछले हिस्से की तरफ ही था। उसकी टाँग, जो बिवाइयों-भरी और धूल-भरी थी, आगे बढ़ने में, उचकती हुई चप्पल पर चटचटाती थी। जाहिर था कि ये पैर धूल-भरी सड़कों पर घूमने के आदी हैं।

यह खयाल आते ही, उसी खयाल से लगे हुए न मालूम किन धागों से हो कर, मैं श्यामला से खुद को कुछ कम, कुछ हीन पाने लगा; और इसकी ग्लानि से उबरने के लिए, मैं उस चलती हुई आकृति के साथ, उसके बराबर हो लिया। वह कहने लगी, 'याद है शाम को बैठक है। अभी चल कर न देखते तो कब देखते। और सबके सामने साबित हो जाता कि तुम खुद कुछ करते नहीं। सिर्फ जबान की कैंची चलती है।'

अब श्यामला को कौन बताए कि न मैं इस भरी दोपहर में स्कूल का मैदान देखने जाता और न शाम को बैठक में ही। संभव था कि 'कोरम' पूरा न होने के कारण बैठक ही स्थगित हो जाती। लेकिन श्यामला को यह कौन बताए कि हमारे आलस्य में भी एक छिपी हुई, जानी-अनजानी योजना रहती है। वर्तमान सुचालन का दायित्व जिन पर है, वे खुद संचालन-मंडल की बैठक नहीं होने देना चाहते। अगर श्यामला से कहूँ तो पूछेगी, 'क्यों!'

फिर मैं जवाब दूँगा। मैं उसकी आँखों से गिरना नहीं चाहता, उसकी नजर में और-और चढ़ना चाहता हूँ। प्रेमी जो हूँ; अपने व्यक्तित्व का सुंदरतम चित्र उपस्थित करने की लालसा भी तो रहती है।

वैसे भी, धूप इतनी तेज थी कि बात करने या बात बढ़ाने की तबीयत नहीं हो रही थी।

मेरी आँखें सामने के पीपल के पेड़ की तरफ गईं, जिसकी एक डाल तालाब के ऊपर, बहुत ऊँचाई पर, दूर तक चली गई थी। उसके सिरे पर एक बड़ा-सा भूरा पक्षी बैठा हुआ था। उसे मैंने चील समझा। लगता था कि वह मछलियों के शिकार की ताक लगाए बैठा है।

लेकिन उसी शाखा की बिलकुल विरुद्ध दिशा में, जो दूसरी डालें ऊँची हो कर तिरछी और बाँकी-टेढ़ी हो गई हैं, उन पर झुंड के झुंड कौवे काँव-काँव कर रहे हैं, मानो वे चील

की शिकायत कर रहे हों और उचक-उचक कर, फुदक-फुदक कर, मछली की ताक में बैठे उस पक्षी के विरुद्ध प्रचार किए जा रहे हों।

- कि इतने में मुझे उस मैदानी-आसमानी चमकीले खुले-खुलेपन में एकाएक, सामने दिखाई देता है - साँवले नाटे कद पर भगवे रंग की खद्दर का बंडीनुमा कुरता, लगभग चौरस मोटा चेहरा, जिसके दाहिने गाल पर एक बड़ा-सा मसा है, और उस मसे में बारीक बाल निकले हुए।

जी धँस जाता है उस सूरत को देख कर। वह मेरा नेता है, संस्था का सर्वेसर्वा है। उसकी खयाली तस्वीर देखते ही मुझे अचानक दूसरे नेताओं की और सचिवालय के उस अँधेरे गलियारे की याद आती है, जहाँ मैंने इस नाटे-मोटे भगवे खद्दर-कुरतेवाले को पहले-पहले देखा था।

उन अँधेरे गलियारों में से मैं कई-कई बार गुजरा हुँ और वहाँ किसी मोड़ पर किसी कोने में इकट्ठा हुए, ऐसी ही संस्थाओं के संचालकों के उतरे हुए चेहरों को देखा है। बावजूद श्रेष्ठ पोशाक और 'अपटूडेट' भेस के सँवलाया हुआ गर्व, बेबस गंभीरता, अधीर उदासी और थकान उनके व्यक्तित्व पर राख-सी मलती है। क्यों?

इसलिए कि माली साल की आखिरी तारीख को अब सिर्फ दो या तीन दिन बचे हैं। सरकारी 'ग्रांट' अभी मंजूर नहीं हो पा रही है, कागजात अभी वित्त-विभाग में ही अटके पड़े हैं। आफिसों के बाहर, गलियारे के दूर किसी कोने में, पेशाबघर के पास, या होटलों के कोनों में क्लर्कों की मुट्ठियाँ गरम की जा रहीं हैं, ताकि 'ग्रांट' मंजूर हो और जल्दी मिल जाए।

ऐसी ही किसी जगह पर मैंने इस भगवे-खद्दर कुरतेवाले को जोर-जोर से अंगरेजी बोलते हुए देखा था। और, तभी मैंने उसके तेज मिजाज और फितरती दिमाग का अंदाजा लगाया था।

इधर, भरी दोपहर में श्यामला का पार्श्व-संगीत चल ही रहा है, मैं उसका कोई मतलब नहीं निकाल पाता। लेकिन न मालूम कैसे, मेरा मन उसकी बातों से कुछ संकेत ग्रहण कर, अपने ही रास्ते पर चलता रहता है। इसी बीच उसके एक वाक्य से मैं चौंक पड़ा, 'इससे अच्छा है कि तुम इस्तीफा दे दो। अगर काम नहीं कर सकते तो गद्दी क्यों अड़ा रखी है।'

इसी बात को कई बार मैंने अपने से भी पूछा था। लेकिन आज उसके मुँह से ठीक उसी बात को सुन कर मुझे धक्का-सा लगा। और मेरा मन कहाँ का कहाँ चला गया।

एक दिन की बात! मेरा सजा हुआ कमरा! चाय की चुस्कियाँ! कहकहे! एक पीले रंग के तिकोने चेहरेवाला मसखरा, ऊलजलूल शख्स! बगैर यह सोचे कि जिसकी वह निंदा कर रहा है, वह मेरा कृपालु मित्र और सहायक है, वह शख्स बात बढ़ाता जा रहा है।

मैं स्तब्ध! किंतु, कान सुन रहे हैं। हारे हुए आदमी-जैसी मेरी सूरत, और मैं!

वह कहता जा रहा है, 'सूक्ष्मदर्शी यंत्र? सूक्ष्मदर्शी यंत्र कहाँ हैं?'

'हैं तो। ये हैं। देखिए।' क्लर्क कहता है। रजिस्टर बताता है। सब कहते हैं-हैं, हैं। ये हैं। लेकिन, कहाँ हैं? यह तो सब लिखित रूप में हैं, वस्तु-रूप में कहाँ हैं।

वे खरीदे ही नहीं गए! झूठी रसीद लिखने का कमीशन विक्रेता को, शेष रकम जेब में। सरकार से पूरी रकम वसूल!

किसी खास जाँच के एन मौके पर किसी दूसरे शहर की...संस्था से उधार ले कर, सूक्ष्मदर्शी यंत्र हाजिर! सब चीजें मौजूद हैं। आइए, देख जाइए। जी हाँ, ये तो हैं सामने। लेकिन जांच खत्म होने पर सब गायब, सब अंतर्धान। कैसा जादू है। खर्चे का आँकडा खूब फुला कर रखिए। सरकार के पास कागजात भेज दीजिए। खास मौकों पर ऑफिसों के धुँधले गलियारों और होटलों के कोनों में मुट्ठियाँ गरम कीजिए। सरकारी 'ग्रांट' मंजूर! और उसका न जाने कितना हिस्सा, बड़े ही तरीके से, संचालकों की जेब में! जी!'

भरी दोपहर में मैं आगे बढ़ा जा रहा हूँ। कानों में ये आवाजों गूँजती जा रही हैं। मैं व्याकुल हो उठता हूँ। श्यामला का पार्श्व-संगीत चल रहा है। मुझे जबरदस्त प्यास लगती है! पानी, पानी!

-कि इतने में एकाकए विश्वविद्यालय के पुस्तकालय की ऊँचे रोमन स्तंभोंवाली इमारत सामने आ जाती है। तीसरा पहर! हलकी धूप! इमारत की पत्थर-सीढ़ियाँ, लंबी, मोतिया!

सीढ़ियों से लग कर, अभरक-मिली लाल मिट्टी के चमचमाते रास्ते पर सुंदर काली 'शेवरलेट'।

भगवे खद्दर-कुरते वाले की 'शेवरलेट', जिसके जरा पीछे मैं खड़ा हूँ, और देख रहा हूँ - यों ही, कार का नंबर - कि इतने में उसके चिकने काले हिस्से में, जो आईने-सा चमकदार है, सूरत दिखाई देती है।

भयानक है वह सूरत! सारे अनुपात बिगड़ गए हैं। नाक डेढ़ गज लंबी और कितनी मोटी हो गई है। चेहरा बेहद लंबा और सिकुड़ गया है। आँखें खड्डेदार। कान नदारद। भूत-जैसा अप्राकृतिक रूप। मैं अपने चेहरे की उस विद्रूपता को, मुग्धभाव से, कुतूहल से और आश्चर्य से देख रहा हूँ, एकटक।

कि इतने में मैं दो कदम एक ओर हट जाता हूँ; और पाता हूँ कि मोटर के उस काले चमकदार आईने में मेरे गाल, ठुड्डी, नाम, कान सब चौड़े हो गए हैं, एकदम चौड़े। लंबाई लगभग नदारद। मैं देखता ही रहता हूँ, देखता ही रहता हूँ कि इतने में दिल के किसी कोने में कई अँधियारी गटर एकदम फूट निकलती है। वह गटर है आत्मालोचन, दु:ख और ग्लानि की।

और, सहसा मुँह से हाय निकल पड़ती है। उस भगवे खद्दर-कुरते वाले से मेरा छुटकारा कब होगा, कब होगा।

और, तब लगता है कि इस सारे जाल में, बुराई की इस अनेक चक्रोंवाली दैत्याकार मशीन में, न जाने कब से मैं फँसा पड़ा हूँ। पैर भिंच गए हैं, पसलियाँ चूर हो गई हैं, चीख निकल नहीं पाती, आवाज हलक में फँस कर रह गई है।

कि इसी बीच अचानक एक नजारा दिखाई देता है। रोमन स्तंभोंवाली विश्वविद्यालय के पुस्तकालय की ऊँची, लंबी, मोतिया सीढ़ियों पर से उतर रही है एक आत्म-विश्वासपूर्ण गौरवमय नारीमूर्ति।

वह किरणीली मुस्कान मेरी ओर फेंकती-सी दिखाई देती है। मैं इस स्थिति में नहीं हूँ कि उसका स्वागत कर सकूँ। मैं बदहवास हो उठता हूँ।

वह धीमे-धीमे मेरे पास आती है। अभ्यर्थनापूर्ण मुस्कराहट के साथ कहती है, 'पढ़ी है आपने यह पुस्तक।'

काली जिल्द पर सुनहले रोमन अक्षरों में लिखा है, 'आई विल नाट रेस्ट।'

मैं साफ झूठ बोल जाता हूँ, 'हाँ पढ़ी है, बहुत पहले।'

लेकिन मुझे महसूस होता है कि मेरे चेहरे पर से तेलिया पसीना निकल रहा है। मैं बार-बार अपना मुँह पोंछता हूँ रूमाल से। बालों के नीचे ललाट-हाँ, ललाट, (यह शब्द मुझे अच्छा लगता है) को रगड़ कर साफ करता हूँ।

और, फिर दूर एक पेड़ के नीचे, इधर आते हुए, भगवे खद्दर-कुरतेवाले की आकृति को देख कर श्यामला से कहता हूँ, 'अच्छा, मै जरा उधर जा रहा हूँ। फिर भेंट होगी।' और सभ्यता के तकाजे से मैं उसके लिए नमस्कार के रूप में मुस्कराने की चेष्टा करता हूँ।

पेड़।

अजीब पेड़ है, (यहाँ रूका जा सकता है), बहुत पुराना पेड़ है, जिसकी जड़ें उखड़ कर बीच में से टूट गई हैं और साबित है, उनके आस-पास की मिट्टी खिसक गई है। इसलिए वे उभर कर ऐंठी हुई-सी लगती हैं। पेड़ क्या है, लगभग ठूँठ है। उसकी शाखाएँ काट डाली गई हैं।

लेकिन, कटी हुई बाँहोंवाले उस पेड़ में से नई डालें निकल कर हवा में खेल रही हैं! उन डालों में कोमल-कोमल हरी-हरी पत्तियाँ झालर-सी दिखाई देती हैं। पेड़ के मोटे तने में से जगह-जगह ताजा गोंद निकल रहा है। गोंद की साँवली कत्थई गठानें मजे में देखी जा सकती हैं।

अजीब पेड़ है, अजीब! (शायद, यह अच्छाई का पेड़ है) इसलिए कि एक दिन शाम की मोतिया-गुलाबी आभा में मैंने एक युवक-युवती को इस पेड़ के तले ऊँची उठी हुई, उभरी हुई, जड़ पर आराम से बैठे हुए पाया था। संभवत: वे अपने अत्यंत आत्मीय क्षणों में डूबे हुए थे।

मुझे देख कर युवक ने आदरपूर्वक नमस्कार किया। लड़की ने भी मुझे देखा और झेंप गई। हलके झटके से उसने अपना मुँह दूसरी ओर कर लिया। लेकिन उसकी झेंपती हुई ललाई मेरी नजरों से न बच सकी।

इस प्रेम-मुग्ध को देख कर मैं भी एक विचित्र आनंद में डूब गया। उन्हें निरापद करने के लिए जल्दी-जल्दी पैर बढाता हुआ मैं वहाँ से नौ-दो ग्यारह हो गया।

यह पिछली गर्मियों की मनोहर साँझ की बात है। लेकिन आज इस भरी दोपहरी में श्यामला के साथ पल-भर उस पेड़ के तले बैठने को मेरी भी तबीयत हुई। बहुत ही छोटी और भोली इच्छा है यह।

लेकिन मुझे लगा कि शायद श्यामला मेरे सुझाव को नहीं मानेगी। स्कूल-मैदान पहुँचने की उसे जल्दी जो है। कहने की मेरी हिम्मत ही नहीं हुई।

लेकिन दूसरे क्षण, आप-ही-आप, मेरे पैर उस ओर बढ़ने लगे। और ठीक उसी जगह मैं भी जा कर बैठ गया, जहाँ एक साल पहले वह युग्म बैठा था। देखता क्या हूँ कि श्यामला भी आ कर बैठ गई है।

तब वह कह रही थी, 'सचमुच बड़ी गरम दोपहर है।'

सामने मैदान-ही-मैदान हैं, भूरे मटमैले! उन पर सिरस और सीसम के छायादार विराम-चिह्न खड़े हैं। मैं लुब्ध और मुग्ध हो कर उनकी घनी-गहरी छायाएँ देखता रहता हूँ...

क्योंकि... क्योंकि मेरा यह पेड़, यह अच्छाई का पेड़ छाया प्रदान नहीं कर सकता, आश्रय प्रदान नहीं कर सकता, **(**क्योंकि वह जगह-जगह काटा गया है**)** वह तो कटी शाखाओं की दूरियों और अंतरालों में से केवल तीव्र और कष्टप्रद प्रकाश को ही मार्ग दे सकता है।

लेकिन मैदानों के इस चिलचिलाते अपार विस्तार में एक पेड़ के नीचे, अकेलेपन में, श्यामला के साथ रहने की यह जो मेरी स्थिति है, उसका अचानक मुझे गहरा बोध हुआ। लगा कि श्यामला मेरी है, और वह भी इसी भाँति चिलमिलाते गरम तत्वों से बनी हुई नारी-मूर्ति है। गरम बफती हुई मिट्टी-सा चिलमिलाता हुआ उसमें अपनापन है।

तो क्या आज ही, अगली अनगिनत गरम दोपहरियों के पहले आज ही, अगले कदम उठाए जाने के पहले, इसी समय, हाँ, इसी समय, उसके सामने अपने दिन की गहरी छिपी हुई तहें और सतहें खोल कर रख दूँ... कि जिससे आगे चल कर उसे गलतफहमी में रखने, उसे धोखे में रखने का अपराधी न बनूँ।

कि इतने में मेरी आँखों के सामने, फिर उसी भगवे खद्दर-कुरतेवाले की तस्वीर चमक उठी। मैं व्याकुल हो गया और उससे छुटकारा चाहने लगा।

तो फिर आत्म-स्वीकार कैसे करूँ, कहाँ से शुरू करूँ**!**

लेकिन क्या वह मेरी बातें समझ सकेगी? किसी तनी हुई रस्सी पर वजन साधते हुए चलने का, 'हाँ', और 'ना' के बीच में रह कर जिंदगी की उलझनों में फँसने का तजुर्बा उसे कहाँ है!

हटाओ, कौन कहे।

लेकिन यह स्त्री शिक्षिता तो है! बहस भी तो करती है! बहस कर बातों का संबंध न उसके स्वार्थ से होता है, न मेरे। उस समय हम लड़ भी तो सकते हैं। और ऐसी लड़ाइयों में कोई स्वार्थ भी तो नहीं होता। सामने अपने दिल की सतहें खोल देने में न मुझे शर्म रही, न मेरे सामने उसे। लेकिन वैसा करने में तकलीफ तो होती ही है, अजीब और पेचीदा, घूमती-घुमाती तकलीफ!

और उस तकलीफ को टालने के लिए हम झूठ भी तो बोल देते हैं, सरासर झूठ, सफेद झूठ! लेकिन झूठ से सचाई और गहरी हो जाती है, अधिक महत्वपूर्ण और अधिक प्राणवान, मानो वह हमारे लिए और सारी मनुष्यता के लिए विशेष सार रखती हो। ऐसी सतह पर हम भावुक हो जाते हैं। और, यह सतह अपने सारे निजीपन में बिलकुल बेनिजी है। साथ ही, मीठी भी! हाँ, उस स्तर की अपनी विचित्र पीड़ाएँ हैं, भयानक संताप है, और इस अत्यंत आत्मीय किंतु निर्वैयक्तिक स्तर पर हम एक हो जाते हैं, और कभी-कभी ठीक उसी स्तर पर बुरी तरह लड़ भी पड़ते हैं।

श्यामला ने कहा, 'उस मैदान को समतल करने में कितना खर्च आएगा?'

'बारह हजार।'

'उनका अंदाज क्या है?'

'बीस हजार ।'

'तो बैठक में जा कर समझा दोगे और यह बता दोगे कि कुल मिला कर बारह हजार से ज्यादा नामुमकिन है?'

'हाँ, उतना मैं कर दूँगा।'

'उतना का क्या मतलब?'

अब मैं उसे 'उतना' का क्या मतलब बताऊँ! साफ है कि उस भगवे खद्दर- कुरतेवाले से मैं दुश्मनी मोल नहीं लेना चाहता। मैं उसके प्रति वफादार रहूँगा क्योंकि मैं उसका

आदमी हूँ। भले ही वह बुरा हो, भ्रष्टाचारी हो, किंतु उसी के कारण ही मैं विश्वास-योग्य माना गया हूँ। इसीलिए, मैं कई महत्वपूर्ण कमेटियों का सदस्य हूँ।

मैने विरोध-भाव से श्यामला की तरफ देखा। वह मेरा रुख देख कर समझ गई। वह कुछ नहीं बोली। लेकिन मानो मैंने उसकी आवाज सुन ली हो।

श्यामला का चेहरा 'चार जनियों-जैसा' है। उस पर साँवली मोहक दीप्ति का आकर्षण है। किंतु उसकी आवाज... हाँ... आवाज... वह इतनी सुरीली और मीठी है कि उसे अनसुना करना निहायत मुश्किल है। उस स्वर को सुन कर दुनिया की अच्छी बातें ही याद आ सकती हैं।

पता नहीं किस तरह की परेशान पेचीदगी मेरे चेहरे पर झलक उठी कि जिसे देख कर उसने कहा, 'कहो, क्या कहना चाहते हो।'

यह वाक्य मेरे लिए निर्णायक बन गया। फिर भी अवरोध शेष था। अपने जीवन का सार-सत्य अपना गुप्त-धन है। उसके गुप्त संधर्ष हैं, उसका अपना एक गुप्त नाटक है। वह प्रकट करते नहीं बनता। फिर भी, शायद है कि उसे प्रकट कर देने ये उसका मूल्य बढ़ जाए, उसका कोई विशेष उपयोग हो सके।

एक था पक्षी। वह नीले आसमान में खूब ऊँचाई पर उड़ता जा रहा था। उसके साथ उसके पिता और मित्र भी थे।

(श्यामला मेरे चेहरे की तरफ आश्चर्य से देखते लगी**)**

सब बहुत ऊँचाई पर उड़नेवाले पक्षी थे। उनकी निगाहें भी बड़ी तेज थीं। उन्हें दूर दूर की भनक और दूर-दूर की महक भी मिल जाती।

एक दिन वह नौजवान पक्षी जमीन पर चलती हुई एक बैलगाड़ी को देख लेता है। उसमें बड़े-बड़े बोरे भरे हुए हैं। गाड़ीवाला चिल्ला-चिल्ला कर कहता है, 'दो दीमकें लो, एक पंख दो।'

उस नौजवान पक्षी को दीमकों का शौक था। वैसे तो ऊँचे उड़नेवाले पक्षियों को हवा में ही बहुत-से कीड़े तैरते हुए मिल जाते, जिन्हें खा कर वे अपनी भूख थोड़ी-बहुत शांत कर लेते।

लेकिन दीमकें सिर्फ जमीन पर मिलती थीं। कभी-कभी पेड़ों पर-जमीन से तने पर चढ़ कर, ऊँची डाल तक, वे अपना मटियाला लंबा घर बना लेतीं। लेकिन वैसे कुछ ही पेड़ होते, और वे सब एक जगह न मिलते।

नौजवान पक्षी को लगा - यह बहुत बड़ी सुविधा है कि एक आदमी दीमकों को बोरों में भर कर बेच रहा है।

वह अपनी ऊँचाइयाँ छोड़ कर मँडराता हुआ नीचे उतरता है और पेड़ की एक डाल पर बैठ जाता है।

दोनों का सौदा तय हो जाता है। अपनी चोंच से एक पर को खींच कर तोड़ने में उसे तकलीफ भी होती है; लेकिन उसे वह बरदाश्त कर लेता है। मुँह में बड़े स्वाद के साथ दो दीमकें दबा कर वह पक्षी फुर्र से उड़ जाता है।

(कहते-कहते मैं थक गया शायद साँस लेने के लिए। श्यामला ने पलकें झपकाईं और कहा, **'**हूँ**')**

अब उस पक्षी को गाड़ीवाले से दीमकें खरीदने और एक पर देने में बड़ी आसानी मालूम हुई। वह रोज तीसरे पहर नीचे उतरता और गाड़ीवाले को एक पंख दे कर दो दीमकें खरीद लेता।

कुछ दिनों तक ऐसा ही चलता रहा। एक दिन उसके पिता ने देख लिया। उसने समझाने को कोशिश की कि बेटे, दीमकें हमारा स्वाभाविक आहार नहीं हैं, और उसके लिए अपने पंख तो हरगिज नहीं दिए जा सकते।

लेकिन, उस नौजवान पक्षी ने बड़े ही गर्व से अपना मुँह दूसरी ओर कर लिया। उसे जमीन पर उतर कर दीमकें खाने की चट लग गई थी। अब उसे न तो दूसरे कीड़े अच्छे लगते, न फल, न अनाज के दाने। दीमकों का शौक अब उस पर हावी हो गया था।

(श्यामला अपनी फैली हुई आँखों से मुझे देख रही थी, उसकी ऊपर उठी हुई पलकें और भौंएँ बड़ी ही सुंदर दिखाई दे रही थीं।**)**

लेकिन ऐसा कितने दिनों तक चलता। उसके पंखों की संख्या लगातार घटती चली गई। अब वह, ऊँचाइयों पर, अपना संतुलन साध नहीं सकता था, न बहुत समय तक पंख उसे सहारा दे सकते थे। आकाश-यात्रा के दौरान उसे जल्दी-जल्दी पहाड़ी चट्टानों गुंबदों और बुर्जों पर हाँफते हुए बैठ जाना पड़ता। उसके परिवार वाले तथा मित्र

ऊँचाइयों पर तैरते हुए आगे बढ़ जाते। वह बहुत पिछड़ जाता। फिर भी दीमक खाने का उसका शौक कम नहीं हुआ। दीमकों के लिए गाड़ीवाले को वह अपने पंख तोड़-तोड़ कर देता रहा।

(श्यामला गंभीर हो कर सुन रही थी। अबकी बार उसने 'हूँ' भी नहीं कहा।**)**

फिर उसने सोचा कि आसमान में उड़ना ही फिजूल है। वह मूर्खों का काम है। उसकी हालत यह थी कि अब वह आसमान में उड़ ही नहीं सकता था, वह सिर्फ एक पेड़ से उड़ कर दूसरे पेड़ तक पहुँच पाता। धीरे-धीरे उसकी यह शक्ति भी कम होती गई। और एक समय वह आया जब वह बड़ी मुश्किल से, पेड़ की एक डाल से लगी हुई दूसरी डाल पर, चल कर, फुदक कर पहुँचता। लेकिन दीमक खाने का शौक नहीं छूटा।

बीच-बीच में गाड़ीवाला बुत्ता दे जाता। वह कहीं नजर में न आता। पक्षी उसके इंतजार में घुलता रहता।

लेकिन दीमकों का शौक जो उसे था। उसने सोचा, 'मैं खुद दीमकें ढूँढ़ूँगा।' इसलिए वह पेड़ पर से उतर कर जमीन पर आ गया; और घास के एक लहराते गुच्छे में सिमट कर बैठ गया।

(श्यामला मेरी ओर देखे जा रही थी। उसने अपेक्षापूर्वक कहा 'हूँ।'**)**

फिर एक दिन उस पक्षी के जी में न मालूम क्या आया। वह खूब मेहनत से जमीन में से दीमकें चुन-चुन कर, खाने के बजाय उन्हें इकट्टा करने लगा। अब उसके पास दीमकों के ढेर के ढेर हो गए।

फिर एक दिन एकाएक वह गाड़ीवाला दिखाई दिया। पक्षी को बड़ी खुशी हुई। उसने पुकार कर कहा, 'गाड़ीवाले, ओ गाड़ीवाले! मैं कब से तुम्हारा इंतजार कर रहा था।'

पहचानी आवाज सुन कर गाड़ीवाला रुक गया। तब पक्षी ने कहा, 'देखो, मैंने कितनी सारी दीमकें जमा कर ली है।'

गाड़ीवाले को पक्षी की बात समझ में नहीं आई। उसने सिर्फ इतना कहा, 'तो मैं क्या करूँ।'

'ये मेरी दीमकें ले लो, और मेरे पंख मुझे वापस कर दो।' पक्षी ने जवाब दिया।

गाड़ीवाला ठठा कर हँस पड़ा। उसने कहा, 'बेवकूफ, मैं दीमक के बदले पंख लेता हूँ, पंख के बदले दीमक नहीं।'

गाड़ीवाले ने 'पंख' शब्द पर जोर दिया था।

(श्यामला ध्यान से सुन रही थी। उसने कहा, **'फिर')**

गाड़ीवाला चला गया। पक्षी छटपटा कर रह गया। एक दिन एक काली बिल्ली आई और अपने मुँह में उसे दबा कर चली गई। तब उस पक्षी का खून टपक-टपक कर जमीन पर बूँदों की लकीर बना रहा था।

(श्यामला ध्यान से मुझे देखे जा रही थी**;** और उसकी एकटक निगाहों से बचने के लिए मेरी आँखें तालाब की सिहरती-काँपती, चिलकती-चमचमाती लहरों पर टिकी हुई थीं**)**

कहानी कह चुकने के बाद, मुझे एक जबरदस्त झटका लगा। एक भयानक प्रतिक्रिया - कोलतार-जैसी काली, गंधक-जैसी पीली-नारंगी!

'नहीं, मुझमें अभी बहुत कुछ शेष है, बहुत कुछ। मैं उस पक्षी-जैसा नहीं मरूँगा। मैं अभी भी उबर सकता हूँ। रोग अभी असाध्य नहीं हुआ है। ठाठ से रहने के चक्कर से बँधे हुए बुराई के चक्कर तोड़े जा सकते हैं। प्राणशक्ति शेष है, शेष ।'

तुरंत ही लगा कि श्यामला के सामने फिजूल अपना रहस्य खोल दिया, व्यर्थ ही आत्म-स्वीकार कर डाला। कोई भी व्यक्ति इतना परम प्रिय नहीं हो सकता कि भीतर का नंगा। बालदार, रीछ उसे बताया जाए। मैं असीम दु:ख के खारे मृत सागर में डूब गया।

श्यामला अपनी जगह से धीरे से उठी, साड़ी का पल्ला ठीक किया, उसकी सलवटें बराबर जमाईं, बालों पर से हाथ फेरा। और फिर (अंगरेजी में) कहा, 'सुंदर कथा है, बहुत सुंदर!'

फिर वह क्षण-भर खोई-सी खड़ी रही, और फिर बोली, **'**तुमने कहाँ पढ़ी**?'**

मैं अपने ही शून्य में खोया हुआ था। उसी शून्य के बीच में से मैंने कहा, **'**पता नहीं**...** किसी ने सुनाई या मैंने कहीं पढ़ी।'

और वह श्यामला अचानक मेरे सामने आ गई, कुछ कहना चाहने लगी, मानो उस कहानी में उसकी किसी बात की ताईद होती हो।

उसके चेहरे पर धूप पड़ी हुई थी। मुखमंडल सुंदर और प्रदीप्त दिखाई दे रहा था।

कि इसी बीच हमारी आँखें सामने के रास्ते पर जम गईं।

घुटनों तक मैली धोती और काली, सफेद या लाल बंडी पहने कुछ देहाती भाई, समूह में चले आ रहे थे। एक के हाथ में एक बड़ा-सा डंडा था, जिसे वह अपने आगे, सामने किए हुए था। उस डंडे पर एक लंबा मरा हुआ साँप झूल रहा था। कला भुजंग, जिसके पेट की हलकी सफेदी भी झलक रही थी।

श्यामला ने देखते ही पूछा, 'कौन-सा साँप है यह?' वह ग्रामीण मुख छत्तीसगढ़ी लहजे में चिल्लाया, 'करेट है बाई, करेट ।'

श्यामला के मुँह से निकल पडा, 'ओफ्फो! करेट तो बड़ा जहरीला साँप होता है।'

फिर मेरी ओर देख कर कहा, 'नाग की तो दवा भी निकली है, करेट की तो कोई दवा नहीं है। अच्छा किया, मार डाला। जहाँ साँप देखो, मार डालो, फिर वह पनियल साँप ही क्यों न हो ।'

और फिर न जाने क्यों, मेरे मन में उसका यह वाक्य गूँज उठा, 'जहाँ साँप देखो, मार डालो।'

और ये शब्द मेरे मन में गूँजते ही चले गए।

कि इसी बीच... रजिस्टर में चढ़े हुए आँकड़ों की एक लंबी मीजान मेरे सामने झूल उठी और गलियारे के अँधेरे कोनों में गरम होनेवाली मुट्ठियों का चोर हाथ ।

श्यामला ने पलट कर कहा, 'तुम्हारे कमरे में भी तो साँप घुस आया था, कहाँ से आया था वह?'

फिर उसने खुद ही जबाब दे लिया, 'हाँ, वह पास की खिड़की में से आया होगा।'

खिड़की की बात सुनते ही मेरे सामने, बाहर की काँटेदार झाड़ियाँ, बेंत की झाड़ियाँ आ गईं, जिसे जंगली बेल ने लपेट रखा था । मेरे खुद के तीखे काँटों के बावजूद, क्या

श्यामला मुझे इसी तरह लपेट सकेगी। बड़ा ही 'रोमांटिक' खयाल है, लेकिन कितना भयानक।

... क्योंकि श्यामला के साथ अगर मुझे जिंदगी बसर करनी है तो न मालूम कितने ही भगवे खद्दर कुरतेवालों से मुझे लड़ना पड़ेगा, जी कड़ा करके लड़ाइयाँ मोल लेनी पड़ेगी और अपनी आमदनी के जरिए खत्म कर देने होंगे। श्यामला का क्या है! वह तो एक गाँधीवादी कार्यकर्ता की लड़की है, आदिवासियों की उस कुल्हाड़ी-जैसी है जो जंगल में अपने बेईमान और बेवफा साथी का सिर धड़ से अलग कर देती है। बारीक बेईमानियों का सूफियाना अंदाज उसमें कहाँ!

किंतु फिर भी आदिवासियों जैसे उस अमिश्रित आदर्शवाद में मुझे आत्मा का गौरव दिखाई देता है, मनुष्य की महिमा दिखाई देती है, पैने तर्क की अपनी अंतिम प्रभावोत्पादक परिणति का उल्लास दिखाई देता है - और ये सब बाते मेरे हृदय का स्पर्श कर जाती हैं। तो, अब मैं इसके लिए क्या करूँ, क्या करूँ!

और अब मुझे सज्जायुक्त भद्रता के मनोहर वातावरण वाला अपना कमरा याद आता है... अपना अकेला धुँधला-धुँधला कमरा। उसके एकांत में प्रत्यावर्तित और पुन: प्रत्यावर्तित प्रकाश कोमल वातावरण में मूल-रश्मियाँ और उनके उद्गम स्त्रोतों पर सोचते रहना, खयालों की लहरों में बहते रहना कितना सरल, सुंदर और भद्रतापूर्ण है। उससे न कभी गरमी लगती है, न पसीना आता है, न कभी कपड़े मैले होते हैं। किंतु प्रकाश के उद्गम के सामने रहना, उसका सामना करना, उसकी चिलचिलाती दोपहर में रास्ता नापते रहना और धूल फाँकते रहना कितना त्रास-दायक है। पसीने से तरबतर कपड़े इस तरह चिपचिपाते हैं और इस कदर गंदे मालूम होते हैं कि लगता है... कि अगर कोई इस हालत में हमें देख ले तो वह बेशक हमें निचले दर्जे का आदमी समझेगा। सजे हुए टेबल पर रखे कीमत फाउंटेनपेन-जैसे नीरव-शब्दांकन-वादी हमारे व्यक्तित्व जो बहुत बड़े ही खुशनुमा मालूम होते हैं - किन्हीं महत्वपूर्ण परिवर्तनों के कारण - जब वे आँगन में और घर-बाहर चलती हुई झाड़ू जैसे काम करनेवाले दिखाई दें, तो इस हालत में यदि सड़क-छाप समझे जाएँ तो इसमें आश्चर्य की ही क्या बात है!

लेकिन मैं अब ऐसे कामों की शर्म नहीं करूँगा, क्योंकि जहाँ मेरा हृदय है, वहीं मेरा भाग्य है!

https://www.hindiadda.com/pakshi-aur-dimak/